कविता

बुनते सपने – बिखरते सपने

- रविशंकर श्रीवास्तव

तपती दुपहरी की गर्म धूप में
एक बुढऊ बुन रहा था खटिया
माथे पर बह रही थी
पसीने की चमचमाती बूंदे

थोड़ी सी की उसने सीधी कमर
निहारा अपनी मेहनत
खटिया हो रहा था पूरा, बस
रह गई थी कसाव और रस्सी की गाँठ

इतने में आया एक हवा का एक झोंका
पसीने की बूँदें लाई ठंडक का अहेसास
बुढऊ ने लगाई टेक खटिए पर
थोड़ी सी और चली हवा

बुढऊ पसर गया अधबुने खटिए पर
गर्म हवा, पसीने और थकावट ने लाई खुमारी
नींद में उसने देखा
वह सोया है स्वर्ण पलंग पर

उसकी नींद जब खुली,
खुल गईं थीं सारी बुनावटें, बिखर गए थे सपने
बुढऊ था जमीन पर, बिखरी थी रस्सियाँ
मेरी तरह, मेरे सपनों की तरह

raviratlami@mantrafreenet.com

100, सुकृति, राजीव नगर, कस्तूरबा, रतलाम म.प्र. 457001